



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2024; 10(1): 154-156

© 2024 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 21-11-2023

Accepted: 25-12-2023

डॉ. दीपिका गोयल

सहायक प्रोफेसर स्वामी कल्याण देव
वैदिक कॉलेज, झिंझाना, शामली

नाट्यपरम्परागत रंगमंच एवं चित्रकला

डॉ. दीपिका गोयल

सारांश

नाट्यपरम्परा पर दृष्टिपात करने से यह समझने में अधिक ऊहापोह करने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि भारतीय नाट्याचार्यों और रंगकर्मियों की रंगमंचीय अवधारणा सुस्पष्ट की। रंगमंच को इतर कलाओं के साथ चित्रकला का भी पूर्ण सहयोग मिला। रंगकर्मियों और चित्रकर्मियों के अन्योन्याश्रित सहयोग का सुपरिणाम भी भारतीय रंगमंच की समृद्धि में एक कारण रहा है। संस्कृत नाटक और रंगमंच का चरम उद्देश्य कला का सहारा लेकर दर्शकों को लोकोत्तर आनन्द प्रदान करके रसानुभूति कराने का रहा है। रूपकों में पात्रों की वेशभूषा, उनका श्रृंगार, रंगमंच की कलात्मक ढंग से सजावट, प्रकृति-चित्रण आदि सभी कार्य चित्रकला के बिना अधूरे हैं। अतः रंगमंच पर उसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

कूटशब्द: रंगमंच, अभिनय, चित्रकला

प्रस्तावना

परम्परा बताती है कि ब्रह्मा ने नाट्यवेद की रचना कर उसके अभिनय का भार भरतमुनि को सौंपा और रंगशाला की साज-सज्जा का दायित्व विश्वकर्मा ने स्वीकार किया। उन्होंने रंगमंच को कलात्मक ढंग से सुसज्जित किया, जहाँ सर्वप्रथम 'असुरपराजय' फिर क्रमशः 'अमृतमंथन' और 'त्रिपुरदाह' आदि का अभिनय किया गया।

युजर्वेद से ज्ञात होता है कि वैदिक युग में शैलूष जाति के लोग रंगमंच पर व्यावसायिक रूप से नाटकों का आयोजन कर जीविकापार्जन किया करते थे। यज्ञ के अवसरों पर सूत और शैलूष लोगों की नियुक्ति की जाती थी, जो नृत्य-गीत-संगीत द्वारा नाट्याभिनय करते थे।¹ रामायण में नृत्य, नृत्त, लास्य और रंगमंचीय कला के अन्य अंगों का उल्लेख प्राप्त है।² महाभारत में नाट्य के शिल्प-विधानों का अधिक स्पष्टीकरण मिलता है। हरिवंश; जो महाभारत का ही एक अंश है; के प्रद्युम्न विवाह-प्रसंग से पता चलता है वसुदेव के स्पष्टीकरण अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर भद्र नामक नट ने उपस्थित ऋषि-महर्षियों को अपने आकर्षण से प्रसन्न किया था।³

कौटिल्य का अर्थशास्त्र ललित कलाओं की शिक्षा-दीक्षा के लिए राज्य की ओर से प्रबन्ध किये जाने का विधान करता है। तदनुसार राज्य में गणिका, दासी, अभिनेत्री, गायिका आदि के लिए चित्रकारी, वीणावादन, वेणुवादन, मुदंगवादन, गन्धनिर्माण, शरीरश्रृंगारादि की कलाओं के शिक्षण के लिए राज्य की ओर से सुयोग्य आचार्यों का प्रबन्ध होना चाहिए।⁴ विवरण मिलते हैं कि धार्मिक उत्सवों पर देवालियों में और पुत्रजन्मोत्सव या विवाहोत्सव आदि अवसरों पर घरों में रंगशालाओं का निर्माण होने लगा था, जहाँ नट केवल नर्तक ही नहीं संगीतज्ञ भी हुआ करते थे तथा रंगमंच पर नाटकों का अभिनय करने लग गये थे।⁵

भरतमुनि के समय में ही नट, नटी, नृत्य वाद्य, संगीत, संवाद, कथावस्तु, रंगमंच आदि का निर्माण हो चुका था। उन्होंने रंगमंच की निर्माणविधि में निम्नलिखित सोपान बताए हैं; 1. भूमि-चयन, 2. विभाजन, 3. स्थापन, 4. भित्तिकर्म, 5. स्तम्भ-स्थापन, 6. मत्तवारणी का निर्माण, 7. षड्दारुक का निर्माण, 8. द्वारनिर्माण, 9. काष्ठविधि, 10. भित्तिलेपन, 11. सुधाकर्म और 12. चित्रकर्म।⁶

भरत नाट्यगृह के निर्माण के लिए स्थिर तथा काली मिट्टीवाली भूमि को उपयुक्त मानते हैं। उनके अनुसार भूमि को हल से जोतकर प्रेक्षागार, रंगपीठ, रंगशीर्ष तथा नेपथ्यगृह इन चारों भागों में यथाशास्त्र विभक्त कर नींव खोदनी चाहिए। नाट्यगृह-स्थापन की विधि में ब्राह्मणों को घृत और पायस, राजा को मधुपक्र तथा कारीगरों को गुड़-भात दिए जाने का विधान है।⁷

चयन किए गए स्थान को चौंसठ गुणा बत्तीस (64×32) हाथ के दो भागों में बाँटा जाता है। इनमें से पीछे वाला हिस्सा फिर दो भागों में बाँटा जाता है, जिसमें सबसे पीछे वाला भाग नेपथ्यगृह होता है और आगे वाला रंगमंच। उस रंगमंच को रंगशीर्ष तथा रंग पीठ इन दो भागों में विभाजित किया जाता

Corresponding Author:

डॉ. दीपिका गोयल

सहायक प्रोफेसर स्वामी कल्याण देव
वैदिक कॉलेज, झिंझाना, शामली

है, शेष बत्तीस गुणा बत्तीस हाथ (32×32) का हिस्सा प्रेक्षागार होता है। विभाजन के पश्चात् दीवार हो जाने पर स्तम्भों का निर्माण किया जाता है। रंग पीठ के दोनों पार्श्वों में चार स्तम्भों से युक्त मन्तरवाणी बनाई जाती है, जो रंगमंच पर अपना विशिष्ट स्थान रखती है। सम्भवतः यह पात्रों के विश्राम के लिये उपयुक्त स्थान रहता होगा। इसका संकेत राजशेखर ने विद्वदशालभंजिका में दिया है, जब नायक ओर विदूषक नायिका की प्रतीक्षा कर रहे हैं तब विदूषक नायक से कहता है कि कब तक हम लोग इस तरह घूमते रहेंगे, आइए हम मन्तरवाणी में बैठकर विश्राम करें।⁹ रंगशीर्ष पर षड्दारुक का सन्निवेश कर सजावट की जाती है। भित्तिकर्म तथा स्तम्भनिवेश हो चुकने के बाद काष्ठविधि का कार्य होता है। द्वार, वातायन, गवाक्ष, नागदन्त आदि यथोचित स्थानों पर बनाए जाते हैं। लेप तथा सुधाकर्म करने के अनन्तर भित्तियों पर चित्र बनाए जाते हैं। चित्रों में स्त्री पुरुष, उनकी श्रृंगार चेष्टाओं, रसमय मुद्राओं, लतावेष्टन और लताबन्धों तथा रमणीय दृश्यों का अंकन किया जा सकता है।⁹

नाट्यशास्त्र के अनुसार रंगमंच पर घृणोत्पादक एवं उद्देगजनक दृश्यों, भोजन, शयन, युद्ध आदि का प्रदर्शन निषिद्ध है। आवश्यकता पड़ने पर घास-फूस से बने, चमड़े से मढ़े या बाँस के टुकड़ों से तैयार घोड़े, हाथी आदि रंगमंच पर दिखाए जा सकते हैं। उन पर अच्छा रंग करके वस्त्रों से उन्हें आच्छादित कर देने का विधान है।¹⁰ रंगमंच पर मानव-जीवन सम्बन्धी घटनाओं को सुबोध तथा विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत करने के लिए सम्बद्ध कलाओं का उपयोग कर दर्शकों को आनन्द प्रदान किया जाता है। रंगमंच और चित्रकला का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके बिना रंगमंच पर प्रस्तुत होनेवाले पात्रों की वेशभूषा व्यवस्थित नहीं की जा सकती, अग्रभूमि और पृष्ठभूमि दृश्यानुसार प्रस्तुत नहीं की जा सकती और रंगमंच को आकर्षक रूप नहीं दिया जा सकता है।

अभिनय शब्द अभि उपसर्गपूर्वक प्राणार्थक 'णीज' धातु से बना है।¹¹ अभिनय रूपक का एक अंग है, जिसके द्वारा नाट्यार्थ को पूर्ण अभिव्यक्त तक पहुँचाया जाता है।¹² यही अभिनय शब्द की सार्थकता है। अभिनय चार प्रकार का होता है— 1. आंगिक 2. वाचिक 3. आहार्य, और 4. सात्त्विक।¹³

नाट्यशास्त्रीय परम्परा में आहार्य अभिनय का सम्बन्ध नेपथ्यविधान से है, जिसकी पूरक कला चित्रकला है।¹⁴

नाट्य-प्रयोग में आहार्य अभिनय का वही स्थान है जो चित्र-रचना में भित्ति का। शेष समस्त अभिनयों को रोक देने पर भी आहार्य बना रहता है। इससे इसके प्रयोग के वैशिष्ट्य को समझा जा सकता है।¹⁵

परवर्ती आचार्यों ने भी आहार्य अभिनय को नेपथ्यविधि के रूप में ही परिभाषित किया है। अभिनयदर्पण के अनुसार हार, केयूर, वेश आदि से अलंकरण करना आहार्य है।¹⁶ भरत ने आहार्य अभिनय या नेपथ्य-विधान चार प्रकार का बताया है। 1. पुस्तरचना, 2. अलंकरण, 3. अंगरचना तथा 4. सज्जीव।¹⁷ शस्त्रों का निर्माण तिनकों तथा बाँस से किया जाता है। लाख या भाण्ड क्रिया करके इन्हें विविध आकार दिए जाते हैं।¹⁸ इनका निर्माण पुस्त-क्रिया अर्थात् आकृतियों में की गई रचना से किया जाता है। नाट्यप्रयोगों में पर्वत, यान विमान, ढाल, कवच, ध्वज, हाथी आदि का निर्माण पुस्त-रचना है।¹⁹ विभिन्न अंगों तथा उपांगों पर धारण की जानेवाली पुष्पमालाओं, अलंकारों तथा वस्त्रों का प्रयोग अलंकरण कहलाता है।²⁰ शरीर के अंगों को रंगना अंगरचना है।

अभिनेताओं को वस्त्र धारण करने से पूर्व अंगरचना करवानी होती है। इसके चार स्वाभाविक रंग माने गए हैं— 1. सफेद, 2. नीला, 3. पीला तथा 4. लाल। इन मुख्य रंगों के संयोग से संयोगज वर्ण तैयार किये जाते हैं। यथा— सफेद + पीला = पाण्डु, सफेद + नीला = कारण्डव, सफेद + लाल = पद्म, नीला + पीला = हरा, नीला + लाल = कषाय तथा लाल + पीला = गौरवर्ण। तीन या चार वर्णों के संयोग से अनेक उपवर्ण बनते हैं। वर्णों के संयोग में

एक वर्ण बलवान् तथा शेष वर्ण दुर्बल रहा करते हैं। अतएव बलवान् वर्ण का एक भाग तथा दुर्बल वर्णों के दो भाग लिये जाते हैं। नीलवर्ण सर्वाधिक बलवान् वर्ण माना जाता है।²¹

अंगरचना के द्वारा अभिनेता का अपना रूप पूर्णतः आच्छादित हो जाता है तथा जिस पात्र की भूमिका करनी है उसकी आकृति प्रकट हो जाती है। तब नट उसी अनुकार्य के भावों, आचारों तथा चेष्टाओं का अनुसरण करता है और वही बन जाता है। इसे प्रभावकरण कहा जाता है। इसके लिए भरत ने परकाय-प्रवेश का दृष्टान्त दिया है।

जिस प्रकार जीव एक देह को छोड़कर दूसरे में प्रवेश करने पर दूसरे देहवाले प्राणी के समान चेष्टा करता हुआ प्रतीत होता है उसी प्रकार वेश तथा वर्णों से आच्छादित अभिनेता भी अनुकार्य की चेष्टाओं को व्यक्त करने लगता है।²² पात्रों के अंगों की प्रकृति, वय, देश तथा जाति के अनुरूप रँगने का विधान है। देवता, यक्ष, अप्सरा को गौरवपूर्ण में, रुद्र, अक्र, दुहिण और स्कन्द जैसे देवपात्रों को सुनहरी रंग में, सोम, बृहस्पति, शुक्र, वरुण, नक्षत्र, सागर, हिमालय, गंगा तथा बलराम को श्वेतवर्ण में, मंगल ग्रह को लाल, बुध तथा अग्नि को पीतवर्ण में, नर-नारायण को श्याम वर्ण में, वासुकि को काले रंग में, दैत्य, दानव, राक्षस, पिशाच, पर्वत के अधिदेवता, जल व आकाश में विचरण करने वाले पात्रों को नीलवर्ण में, यक्ष, गन्धर्व, भूत, पन्नग, विद्याधर, पितर तथा वानरों को विभिन्न रंगों में रँगा जाता है।²³

ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिये गौरवपूर्ण तथा वैश्य और शूद्र के लिये श्यामवर्ण विहित है।²⁴ सातों द्वीपों में रहने वाले मनुष्यों के रंग तपे हुए सोने के समान तथा गौरवपूर्ण या उनकी भूमिका के अनुरूप रखे जा सकते हैं। जम्बूद्वीप के निवासियों के अनेक वर्ण हो सकते हैं। भद्राश्व देश के निवासियों का श्वेतवर्ण, केतमाल देश के निवासियों का नीलवर्ण तथा शेष देशों के निवासियों का गौरवपूर्ण निर्धारित है। भूतों तथा वामनों के अनेक वर्ण होते हैं। भूतों के चेहरे भैंसे, हरिण, वराह या बकरे के चेहरे जैसे बताए जाते हैं। भारतीय मानवों में राजाओं का रंग पद्म, श्याम या गौर, सुखियों का गौर, कदाचारी, भूतग्रस्त, बीमार, तपस्वियों तथा श्रमिकों का असित तथा ऋषियों का बदरप्रभ (केसरिया) बताया गया है।²⁵

किरात, बर्बर, आन्ध्र, द्रमिल, काशी, कोशल, पुलिन्ध तथा दाक्षिणात्य मनुष्यों का वर्ण असित; शक, यवन, पहलव, वाहलीक, उत्तरदिशा में स्थित लोगों का गौर एवं पांचाल, शौरसेन, माहिष, मगध, अंग, वंग तथा कलिंग देश के निवासियों को श्याम दिखाया जाता है।²⁶

अभिनेता जिन भूमिकाओं में व्यापृत होता है। वे प्राणी तथा अप्राणी के भेद से दो प्रकार की होती हैं। देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा सर्पों को प्राणी कहा जाता है। इसी प्रकार यदि पर्वत, नदी, समुद्र तथा वाहनादि को भी प्रयोजन विशेष में सजीव रूप में दिखाया जाये तो इन्हें प्राणी कहा जायेगा। पर्वत, महल, यन्त्र आदि अजीव पदार्थ हैं। पर फिर भी आवश्यकतानुसार इन्हें भी नाट्य-धर्मी विधान में सजीव प्राणी के रूप में दिखाया जा सकता है।²⁷

नाट्यशास्त्र में स्थान अवस्था तथा समय के अनुरूप दाढ़ी तथा मूँछ का प्रयोग भी निरूपित है।²⁸ श्मश्रु चार प्रकार की हैं— 1. शुक्ल, 2. विचित्र, 3. श्याम, तथा 4. रोमश। सन्यासी, मंत्री, पुरोहित, मध्यस्थ तथा दीक्षित की मूँछे शुक्ल; सिद्ध, विद्याधर, राजा, राजकुमार, युवराज, राजसेवक, छली तथा यौवनोन्मादी की विचित्र और ऋषि तपस्वी, दीर्घव्रती नर तथा चीरबद्ध मुनि की रोमश होती है।²⁹ आहार्य के अन्तर्गत प्रतिशीर्षक (मुखौटे) भी आते हैं। भरत के अनुसार देवताओं व मनुष्यों के देश, जाति तथा अवस्था के अनुरूप मुखौटे बनाये जाते हैं।³⁰

पात्रों के केशविन्यास के लिए भरत व्यवस्था देते हैं कि बालकों को मस्तक त्रिशिखण्डधारी, सुधाओं का जटामुकुटधारी, राक्षस, दानव व दैत्यों का पीतकेशधारी तथा हरी मूँछों व मुकुटों को धारण किये जाना चाहिए।³¹

निष्कर्ष

आहार्य अभिनय की उक्त विधियों में रंगों और संयोजन को लेकर चित्रकला की भूमि निर्विवाद है। भरत ने रंगमंच के सन्दर्भ में वर्णों के प्रकारों और उनके निर्माण की व्यवस्था देकर रंगकर्म और चित्रकर्म के सहयोगी कला होने का संकेत कर दिया है। आंगिक अभिनय में दोनों कला एक-दूसरे को शारीरिक भंगिमाओं की विच्छित्तियाँ प्रदान करनेवाली कलाएँ हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय समाचरं नरिष्ठायै भीमलं नमयि रेभं।
हसाय कारि मानन्दाय स्त्रीपरवं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय लक्षणाम्।।
यजुंस०, अ० 3०
2. रामा०, 6, 24, 42-43
3. महा०; हरिवंशपर्व, अ०, 91-97
4. कौटिलीय-अर्थशास्त्र, अध्यक्ष-प्रचार, अ० 41
5. संस्कृत ज्ञाना, डा० कीथ पृ० 45
6. नाशा०, अ० 2
7. वही, 2. 36-42
8. विद्ध०, पृ० 49
9. नाशा०, 2. 84-85
10. वही, 21. 207
11. णीञ्-प्रापणे, धापा०, 901
12. नाशा०, 8.7
13. आङ्गिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्त्विक स्तथा।
14. ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राश्चतुर्धा परिकीर्तितः।। नाशा०, 8.9
आहार्याभिनयो नाम ज्ञेयो नेपथ्यजो विधिः।
तत्र कार्यः प्रयत्नस्तु नाट्यस्य शुभमिच्छता।। वही, 23.2
15. तेन समस्ताभिनयप्रयोगचित्रस्य भित्तिस्थानीयमाहार्यम्। तथा च समस्ताभिनयव्युपरमेअपि नेपथ्यविशेषदर्शनाद् विशेषोअवसीयत एव।
अभिभा०, ख० 3, पृ०, 1०3
16. आहार्यो हारकेयूरवेषादिभिरलङ्कृतः। अद०, 40
17. नाशा०, 23.5
18. वही, 23.195
19. वही, 23.9
20. वही, 23.1०
21. वही, 23. 74-82
22. नाशा०, 23. 84-87
23. वही 23. 91-16
24. वही, 23. 109
25. वही, 23. 97-103
26. वही, 23. 106-107
27. नाशा० 23. 88-90
28. वही, 23. 170
29. वही, 23, 111-116
30. वही, 23, 133
31. वही, 23, 141-143